**Academe** *Journal of Education & Psychology* *ISSN: 2249-040X*
*Volume-15, Issue-2, Year-2025 (July-December)* *Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 6.25)*
*PP: 452-459* *Journal Website www.academejournal.in*

# आदिवासी अस्मिता, विस्थापन और सांस्कृतिक प्रतिरोध : 'गायब होता देश' के संदर्भ में आदिवासी जीवन का समाजशास्त्रीय एवं साहित्यिक अध्ययन

**भावना कुमारी**
शोधार्थी
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा


## शोध-सारांश :–

समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श एक सशक्त वैचारिक और साहित्यिक हस्तक्षेप के रूप में उभरकर सामने आया है। यह विमर्श केवल किसी समुदाय विशेष की पीड़ा का आख्यान नहीं, बल्कि भारतीय समाज की लोकतांत्रिक संरचना, विकास की अवधारणा और सांस्कृतिक चेतना पर गंभीर प्रश्न भी उपस्थित करता है। आधुनिक समय में जब वैश्वीकरण, पूँजीवाद और औद्योगीकरण ने विकास की नई परिभाषाएँ निर्मित कीं, तब सबसे अधिक प्रभावित होने वाला वर्ग आदिवासी समुदाय रहा। जल, जंगल और जमीन से गहरे रूप में जुड़ा आदिवासी समाज अपनी पारंपरिक जीवन-व्यवस्था, संस्कृति और अस्मिता के संकट से गुजरने लगा।

प्रस्तुत शोधपत्र में 'गायब होता देश' के आधार पर आदिवासी जीवन के विविध पक्षों—जैसे विस्थापन, सांस्कृतिक विघटन, आर्थिक शोषण, पर्यावरणीय संकट, स्त्री-विमर्श और प्रतिरोध की चेतना का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि मुख्यधारा का विकास मॉडल किस प्रकार आदिवासी समाज को हाशिए पर धकेलता है और उनकी सांस्कृतिक पहचान को नष्ट करता है।

शोध में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि आदिवासी समाज को अक्सर पिछड़ेपन, हिंसा और अशिक्षा के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया, जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है। आदिवासी समुदाय प्रकृति-संरक्षण, श्रम-संस्कृति, सामुदायिक जीवन और मानवीय सह-अस्तित्व के मूल्यों का संवाहक रहा है। साहित्य इन समुदायों की पीड़ा को केवल अभिव्यक्त नहीं करता, बल्कि उनके संघर्ष और प्रतिरोध को वैचारिक आधार भी प्रदान करता है।

यह अध्ययन गुणात्मक शोध-पद्धति पर आधारित है, जिसमें पाठ-विश्लेषण, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण तथा सांस्कृतिक विमर्श का उपयोग किया गया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आदिवासी विमर्श भारतीय समाज की उन विसंगतियों को उजागर करता है, जिनकी उपेक्षा


**© Copyright @ Authors**

लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। आदिवासी जीवन को समझे बिना भारतीय समाज और साहित्य की संपूर्णता को समझना संभव नहीं है।

**प्रस्तावना :–**

भारतीय समाज की सांस्कृतिक संरचना विविधताओं से निर्मित है। इस विविधता में आदिवासी समुदायों का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आदिवासी समाज भारतीय सभ्यता की उन मूल सांस्कृतिक धाराओं का प्रतिनिधित्व करता है, जिनका संबंध प्रकृति, श्रम, सामूहिकता और लोक-संस्कृति से रहा है। किंतु विडंबना यह है कि भारतीय इतिहास और मुख्यधारा के साहित्य में इन समुदायों को लंबे समय तक हाशिए पर रखा गया। उन्हें या तो असभ्य, पिछड़ा और जंगली कहकर देखा गया अथवा उनकी समस्याओं को विकास की प्रक्रिया के नाम पर उपेक्षित कर दिया गया।

आधुनिक समय में जब औद्योगीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रियाएँ तीव्र हुईं, तब आदिवासी जीवन सबसे अधिक प्रभावित हुआ। खनन उद्योगों, बाँध परियोजनाओं, वन कानूनों और पूँजीवादी विस्तार ने आदिवासी समुदायों को उनके प्राकृतिक परिवेश से विस्थापित कर दिया। उनके जल, जंगल और जमीन पर बाहरी शक्तियों का नियंत्रण स्थापित होने लगा। परिणामस्वरूप आदिवासी समाज अपनी अस्मिता, संस्कृति और अस्तित्व के संकट से जूझने लगा।

समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श इसी संकट और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति है। यह विमर्श आदिवासी समाज की समस्याओं को केंद्र में लाकर मुख्यधारा के विकासवादी मॉडल की आलोचना करता है। 'गायब होता देश' जैसे साहित्यिक आख्यान इस तथ्य को उद्घाटित करते हैं कि विकास की अंधी दौड़ ने आदिवासी समाज को केवल विस्थापन और पीड़ा ही प्रदान की है।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य आदिवासी जीवन की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन करना है। विशेष रूप से यह देखा जाएगा कि साहित्य किस प्रकार आदिवासी समाज की वास्तविकता को अभिव्यक्त करता है तथा उनके संघर्ष और प्रतिरोध को वैचारिक आधार प्रदान करता है।

**उपलब्ध साहित्य :–**

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श पर अनेक रचनाएँ और आलोचनात्मक अध्ययन उपलब्ध हैं। महाश्वेता देवी, रमणिका गुप्ता, हरिराम मीणा, रणेंद्र, संजीव, भगवानदास मोरवाल तथा अन्य लेखकों ने आदिवासी जीवन को साहित्य में प्रमुखता से स्थान दिया है। इन रचनाकारों ने


**© Copyright @ Authors**

आदिवासी समाज की समस्याओं, संघर्षों और सांस्कृतिक अस्मिता को गहरी संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है।

महाश्वेता देवी की रचनाओं में आदिवासी जीवन का संघर्ष और शोषण अत्यंत तीव्र रूप में व्यक्त हुआ है। उन्होंने आदिवासी समाज के भीतर व्याप्त पीड़ा, भूख और अन्याय को साहित्यिक चेतना का विषय बनाया। हरिराम मीणा ने आदिवासी इतिहास और संस्कृति को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। रणेंद्र के साहित्य में आधुनिक विकास-व्यवस्था द्वारा उत्पन्न विस्थापन और सांस्कृतिक संकट का चित्रण मिलता है।

आलोचनात्मक साहित्य में आदिवासी विमर्श को दलित विमर्श और स्त्री-विमर्श के समानांतर एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक आंदोलन माना गया है। अनेक अध्येताओं का मत है कि आदिवासी समाज को मुख्यधारा के इतिहास और साहित्य में उचित स्थान नहीं मिला। उनके संघर्षों और योगदानों को या तो दबा दिया गया या विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया।

उपलब्ध साहित्य यह भी स्पष्ट करता है कि आदिवासी समाज का प्रश्न केवल आर्थिक शोषण तक सीमित नहीं है। यह सांस्कृतिक अस्तित्व, पर्यावरण-संरक्षण और मानवीय अधिकारों से भी जुड़ा हुआ है। आधुनिक विकास-नीतियों ने आदिवासी क्षेत्रों को संसाधन-क्षेत्र के रूप में देखा, जिससे व्यापक विस्थापन और पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हुआ।

अनेक शोधों में यह प्रतिपादित किया गया है कि आदिवासी समाज प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना में विश्वास करता है। उनकी जीवन-पद्धति पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने वाली रही है। इसके विपरीत आधुनिक औद्योगिक विकास ने प्रकृति का अंधाधुंध दोहन किया, जिससे आदिवासी जीवन और पर्यावरण दोनों संकटग्रस्त हो गए।

इस प्रकार उपलब्ध साहित्य से स्पष्ट होता है कि आदिवासी विमर्श केवल साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक अस्मिता और लोकतांत्रिक मूल्यों की पुनर्समीक्षा का आंदोलन भी है।

## शोध-प्रविधि :–

प्रस्तुत शोधपत्र में गुणात्मक शोध-पद्धति का उपयोग किया गया है। अध्ययन का आधार पाठ-विश्लेषण, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण और सांस्कृतिक विमर्श है। शोध के लिए आदिवासी जीवन से संबंधित साहित्यिक कृतियों, आलोचनात्मक ग्रंथों और वैचारिक लेखों का अध्ययन किया गया है।


**© Copyright @ Authors**

शोध में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति को अपनाया गया है। साहित्यिक पाठों में चित्रित घटनाओं, चरित्रों और परिस्थितियों का विश्लेषण सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में किया गया है। साथ ही, आदिवासी समाज से संबंधित ऐतिहासिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तथ्यों को भी अध्ययन का आधार बनाया गया है।

शोध के दौरान यह ध्यान रखा गया है कि आदिवासी जीवन को केवल सहानुभूति के दृष्टिकोण से न देखकर उसकी सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक चेतना और राजनीतिक संघर्ष को भी समझा जाए। इसी उद्देश्य से पाठ के भीतर उपस्थित प्रतीकों, रूपकों और सांस्कृतिक संकेतों का भी विश्लेषण किया गया है।

## परिणाम एवं विमर्श :–

1. आदिवासी अस्मिता का प्रश्न

आदिवासी समाज भारतीय सभ्यता का मूल निवासी समुदाय माना जाता है। किंतु इतिहास और सत्ता-संरचनाओं ने उन्हें हमेशा हाशिए पर रखा। मुख्यधारा के समाज ने आदिवासियों की एक ऐसी छवि निर्मित की, जिसमें उन्हें पिछड़ा, असभ्य और हिंसक बताया गया। यह छवि वस्तुतः सत्ता द्वारा निर्मित एक मिथक थी, जिसका उद्देश्य उनके वास्तविक प्रश्नों को दबाना था।

साहित्य इस मिथक का प्रतिवाद करता है। आदिवासी जीवन के साहित्यिक चित्रण में यह स्पष्ट रूप से उभरता है कि आदिवासी समाज श्रमशील, सामुदायिक और प्रकृति-निष्ठ जीवन-पद्धति का संवाहक है। उनका जीवन प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना पर आधारित है।

आदिवासी अस्मिता का प्रश्न केवल पहचान का प्रश्न नहीं, बल्कि अस्तित्व का प्रश्न भी है। जब आदिवासी समाज को उसकी भूमि, भाषा और संस्कृति से अलग किया जाता है, तब उसकी अस्मिता संकट में पड़ जाती है। यही कारण है कि आदिवासी विमर्श में जल, जंगल और जमीन के प्रश्न को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना गया है।

## 2. जल-जंगल-जमीन और विस्थापन–

आदिवासी जीवन का सबसे बड़ा आधार जल, जंगल और जमीन है। यही उनके आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का केंद्र है। किंतु आधुनिक विकास-परियोजनाओं ने इन्हीं संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित कर आदिवासी समाज को विस्थापन की ओर धकेल दिया।


**© Copyright @ Authors**

खनन उद्योग, बाँध परियोजनाएँ, औद्योगिक क्षेत्र और वन कानून आदिवासी समुदायों के लिए संकट का कारण बने। विकास के नाम पर हजारों गाँव उजाड़ दिए गए और आदिवासी समाज को उनके प्राकृतिक परिवेश से अलग कर दिया गया।

विस्थापन केवल भौतिक नहीं होता, बल्कि सांस्कृतिक और मानसिक भी होता है। जब कोई समुदाय अपनी भूमि से अलग होता है, तब उसकी स्मृतियाँ, परंपराएँ और सामुदायिक संबंध भी टूट जाते हैं। यही कारण है कि आदिवासी समाज के भीतर गहरी असुरक्षा और विस्थापन-बोध उत्पन्न हुआ।

साहित्य इस विस्थापन को केवल आँकड़ों के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय त्रासदी के रूप में प्रस्तुत करता है। आदिवासी जीवन की पीड़ा, उनके टूटते संबंध और अस्तित्व-संघर्ष साहित्य में अत्यंत मार्मिक रूप में व्यक्त हुए हैं।

### 3. पूँजीवाद और शोषण की संरचना–

आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था ने आदिवासी क्षेत्रों को प्राकृतिक संसाधनों के भंडार के रूप में देखा। खनिज संपदा और वन-संपदा पर अधिकार स्थापित करने के लिए उद्योगपतियों, प्रशासन और राजनीतिक शक्तियों का गठजोड़ सक्रिय हुआ।

इस व्यवस्था में आदिवासी समाज केवल सस्ते श्रम और विस्थापन के शिकार समुदाय के रूप में देखा गया। उनकी भूमि पर कब्जा किया गया, लेकिन उन्हें विकास का लाभ नहीं मिला। परिणामस्वरूप गरीबी, बेरोजगारी और सामाजिक असुरक्षा की स्थिति उत्पन्न हुई।

साहित्य यह संकेत करता है कि आदिवासी प्रतिरोध को अक्सर नक्सलवाद अथवा हिंसा के रूप में प्रस्तुत किया गया, जबकि उनका संघर्ष अपने अधिकारों और अस्तित्व की रक्षा के लिए था। सत्ता-संरचनाएँ उनके प्रतिरोध को अपराध घोषित कर उनकी आवाज़ दबाने का प्रयास करती हैं।

यह स्थिति लोकतांत्रिक व्यवस्था की विडंबना को उजागर करती है। एक ओर विकास और समानता की बातें की जाती हैं, दूसरी ओर आदिवासी समुदायों को उनके मूल अधिकारों से वंचित रखा जाता है।

### 4. आदिवासी स्त्री की स्थिति–

आदिवासी समाज में स्त्रियाँ श्रम और संघर्ष की महत्त्वपूर्ण सहभागी होती हैं। वे जंगल, खेत और घर–सभी क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। किंतु इसके बावजूद उन्हें समान सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती।


**© Copyright @ Authors**

आदिवासी स्त्रियाँ दोहरे शोषण का सामना करती हैं। एक ओर वे आर्थिक और सामाजिक विषमताओं से जूझती हैं, दूसरी ओर पितृसत्तात्मक संरचना उन्हें हाशिए पर रखती है। आधुनिक समय में मानव तस्करी, यौन उत्पीड़न और श्रम-शोषण जैसी समस्याएँ उनकी स्थिति को और अधिक जटिल बनाती हैं।

साहित्य में आदिवासी स्त्रियों की पीड़ा और संघर्ष अत्यंत संवेदनशीलता के साथ चित्रित हुआ है। वे केवल पीड़िता नहीं, बल्कि प्रतिरोध और साहस की प्रतीक भी हैं। उनकी उपस्थिति आदिवासी विमर्श को स्त्री-विमर्श से जोड़ती है।

### 5. पर्यावरणीय संकट और आदिवासी दृष्टि–

आदिवासी समाज का जीवन प्रकृति के साथ गहरे संबंध पर आधारित है। जंगल उनके लिए केवल संसाधन नहीं, बल्कि संस्कृति और अस्तित्व का आधार हैं। वे प्रकृति को उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि सह-अस्तित्व के रूप में देखते हैं।

आधुनिक औद्योगिकीकरण और शहरीकरण ने पर्यावरणीय संतुलन को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। जंगलों की कटाई, खनन और प्रदूषण ने न केवल आदिवासी जीवन को संकटग्रस्त किया, बल्कि संपूर्ण मानव सभ्यता के सामने पर्यावरणीय संकट उत्पन्न कर दिया।

साहित्य में यह चिंता स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है कि प्रकृति का विनाश अंततः मानव समाज के विनाश का कारण बनेगा। आदिवासी दृष्टि इस संदर्भ में एक वैकल्पिक पर्यावरणीय चेतना प्रस्तुत करती है, जो वर्तमान समय में अत्यंत प्रासंगिक है।

### 6. सांस्कृतिक विघटन और आधुनिकता–

आधुनिक विकासवादी प्रक्रियाओं ने आदिवासी समाज की संस्कृति को भी प्रभावित किया है। शिक्षा, बाज़ार और शहरीकरण के प्रभाव से उनकी पारंपरिक जीवन-शैली में परिवर्तन आया। लोकगीत, लोककथाएँ, नृत्य और सामुदायिक परंपराएँ धीरे-धीरे कमजोर होती गईं।

सांस्कृतिक विघटन का सबसे बड़ा कारण यह है कि आदिवासी समुदायों को उनकी जड़ों से अलग कर दिया गया। जब कोई समाज अपनी भाषा और संस्कृति खो देता है, तब उसकी पहचान भी संकट में पड़ जाती है।

साहित्य इस सांस्कृतिक संकट को गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत करता है। साथ ही, यह आदिवासी संस्कृति के भीतर मौजूद जीवन-मूल्यों और सामुदायिक चेतना को भी रेखांकित करता है।


**© Copyright @ Authors**

**7. प्रतिरोध की चेतना–**

आदिवासी विमर्श केवल पीड़ा का आख्यान नहीं, बल्कि प्रतिरोध की चेतना भी है। आदिवासी समाज ने हमेशा अपने अधिकारों और अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष किया है। उनका प्रतिरोध सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक स्तरों पर व्यक्त होता है।

लोकगीत, परंपराएँ, उत्सव और सामुदायिक जीवन उनके प्रतिरोध की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ हैं। साहित्य इन अभिव्यक्तियों को स्वर देकर आदिवासी चेतना को व्यापक समाज तक पहुँचाता है।

यह प्रतिरोध आधुनिक लोकतंत्र के लिए भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह विकास की एकांगी अवधारणाओं को चुनौती देता है और सामाजिक न्याय की माँग करता है।

**निष्कर्ष :–**

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आदिवासी जीवन भारतीय समाज की मूलभूत संरचना का अभिन्न हिस्सा है, किंतु आधुनिक विकासवादी नीतियों ने उसे गहरे संकट में डाल दिया है। विस्थापन, आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक विघटन, पर्यावरणीय संकट और स्त्री-शोषण जैसी समस्याएँ आदिवासी समाज के समक्ष गंभीर चुनौतियों के रूप में उपस्थित हैं।

साहित्य इन समस्याओं को केवल अभिव्यक्त ही नहीं करता, बल्कि सामाजिक चेतना को भी निर्मित करता है। आदिवासी विमर्श मुख्यधारा की सत्ता-संरचनाओं और विकास की अवधारणाओं पर प्रश्नचिह्न लगाता है। यह विमर्श हमें यह सोचने के लिए बाध्य करता है कि विकास का वास्तविक अर्थ क्या है और उसमें मानवीय संवेदना तथा सामाजिक न्याय का स्थान कहाँ है।

आदिवासी समाज को केवल विकास की वस्तु नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया के सक्रिय सहभागी के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है। उनकी संस्कृति, भाषा और जीवन-पद्धति को संरक्षित किए बिना भारतीय समाज की सांस्कृतिक विविधता और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा संभव नहीं है।

आदिवासी जीवन पर आधारित साहित्य भारतीय समाज की उन सच्चाइयों को सामने लाता है, जिन्हें लंबे समय तक दबाया गया। यह साहित्य केवल करुणा उत्पन्न करने के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना को जागृत करने के लिए लिखा गया है।

'गायब होता देश' जैसे आख्यान यह स्पष्ट करते हैं कि यदि विकास की प्रक्रिया में आदिवासी समाज और प्रकृति की उपेक्षा की जाएगी, तो अंततः संपूर्ण मानव समाज संकट में पड़ जाएगा।


**© Copyright @ Authors**

आदिवासी समुदायों की समस्याएँ केवल किसी एक वर्ग की समस्याएँ नहीं, बल्कि भारतीय लोकतंत्र और मानव सभ्यता की चुनौतियाँ हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि आदिवासी समाज को उसकी सांस्कृतिक अस्मिता और मानवीय गरिमा के साथ स्वीकार किया जाए। साहित्य और शोध दोनों का दायित्व है कि वे आदिवासी जीवन के संघर्षों, पीड़ाओं और संभावनाओं को गंभीरता से अभिव्यक्त करें, ताकि समाज अधिक संवेदनशील, न्यायपूर्ण और मानवीय बन सके।

**संदर्भ :–**

1. रणेंद्र, गायब होता देश
2. देवी महाश्वेता, जंगल के दावेदार
3. मीणा हरिराम, धूणी तपे तीर
4. गुप्ता रमणिका, आदिवासी साहित्य और विमर्श
5. मीणा हरिराम, डांग
6. सिंह नामवर, इतिहास और आलोचना
7. रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य और समाज
8. पांडेय मैनेजर, साहित्य और समाजशास्त्र
9. हिंदी आदिवासी विमर्श से संबंधित विविध शोध-पत्र एवं आलोचनात्मक ग्रंथ।


**© Copyright @ Authors**